गायत्री मंत्र के **तु** अक्षर की व्याख्या

आपत्तियों में धैर्य

• पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

आपत्तियों में धैर्य

गायत्री का पाँचवाँ अक्षर 'तु' आपत्तियों और कठिनाइयों में धैर्य रखने की शिक्षा देता है—

तु-तुषाराणां प्रपातेऽपि यत्नो धर्मस्तु चात्मनः।
महिमा च प्रतिष्ठा च प्रोक्ता परिश्रमस्यहि॥

अर्थात—"आपत्तिग्रस्त होने पर भी प्रयत्न करना आत्मा का धर्म है। प्रयत्न की महिमा और प्रतिष्ठा अपार कही गई है।"

मनुष्य के जीवन में विपत्तियाँ, कठिनाईयाँ, विपरीत परिस्थितियाँ, हानियाँ और कष्ट की घड़ियाँ आती ही रहती हैं। जैसे काल-चक्र के दो पहलू—काल और दिन हैं, वैसे ही संपदा और विपदा, सुख और दुःख भी जीवन रथ के दो पहिये हैं। दोनों के लिए ही मनुष्य को निस्पृह वृत्ति से तैयार रहना चाहिए। आपत्ति में छाती पीटना और संपत्ति में इतराकर तिरछा चलना, दोनों ही अनुचित हैं।

आशाओं पर तुषारपात होने की, निराशा, चिंता, भय और घबराहट उत्पन्न करने वाली स्थिति पर भी मनुष्य को अपना मस्तिष्क असुंलित नहीं होने देना चाहिए। धैर्य को स्थिर रखते हुए सजगता, बुद्धिमत्ता, शांति और दूरदर्शिता के साथ कठिनाइयों को मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। जो कठिन समय में भी हँसता रहता है, जो नाटक के पात्रों की तरह जीवन के खेल को खेलता है उसी की बुद्धि स्थिर मानी जा सकती है।

समयानुसार बुरे दिन तो निकल जाते हैं, पर वे अनेक अनुभवों, गुण और सहनशक्ति का उपहार दे जाते हैं। कठिनाइयाँ मनुष्य को जितना सिखाती हैं, उतना दस गुरु मिलकर भी नहीं सिखा सकते। संचित प्रारब्ध भोगों का बोझ भी उन आपत्तियों के साथ उतर जाता है। आपत्तियाँ हमारे विवेक और पुरुषार्थ को चुनौती देने आती हैं, और जो उस परीक्षा में

उत्तीर्ण हो जाता है उसी के गले में कीर्ति और प्रतिष्ठा की जयमाला पहनाई जाती है।

इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह भूतकाल से अभिज्ञ, वर्तमान के प्रति सजग और भविष्य के प्रति निर्भय रहे। मनुष्य को अच्छी से अच्छी आशा करनी चाहिए, किंतु बुरी से बुरी परिस्थितियों के लिए तैयार भी रहना चाहिए। मानसिक संतुलन संपत्ति या विपत्ति किसी भी दशा में नहीं बिगड़ने देना चाहिए। वर्तमान की अपेक्षा उत्तम दशा में पहुँचने का पूर्ण प्रयत्न करना तो आत्मा का स्वाभाविक धर्म है, परंतु कठिनाइयों से घबरा जाना उसके गौरव की दृष्टि से अनुपयुक्त है।

आपत्तियों से डरना व्यर्थ है?

मनुष्य जीवन में दु:ख और कठिनाइयों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। कठिनाइयों के आघातों में ही प्रगति का विधान छिपा हुआ है। यदि सदा केवल सरलता और अनुकूलता ही रहे तो चैतन्यता घटती जाएगी और मनुष्य शनै: शनै आलसी और अकर्मण्य बनने लगेगा, उसके मन: क्षेत्र में एक प्रकार का अवसाद उत्पन्न हो जाएगा, जिसके कारण उन्नति, अन्वेषण, आविष्कार और महत्त्वाकांक्षाओं का मार्ग अवरुद्ध हुए बिना न रहेगा। जब दु:ख की अनुभूति न हो, तब सुख में कोई आनंद नहीं मिल सकता। रात न हो सदैव दिन ही रहे तो उस दिन से किसे क्या आनंद मिलेगा? यदि नमक, मिर्च, कड़ुआ, कसैला स्वाद न हो और केवल मीठा ही मीठा सदा खाने को मिले तो वह मधुरता एक भार बन जाएगी। इसी प्रकार सुख में आनंद का आस्वादन होना तभी संभव है जब दु:ख का पुट साथ–साथ में हो। दु:ख को हम बुरा कहते हैं पर वस्तुत: वही प्रगति का वास्तविक केंद्र है।

संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, उनकी महानता, यश एवं प्रतिष्ठा का कारण उनकी कष्ट सहिष्णुता हुई है। राजा हरिश्चंद्र यदि चांडाल (डोम) के हाथों न बिके होते कोई उनका नाम भी न जानता होता। दधीचि, शिवि, प्रह्लाद, मोरध्वज, सीता, दमयंती, द्रोपदी, कुंती आदि के जीवन में यदि कठिनाई न आती, वे लोग ऐश्वर्य से जीवन बिताते रहते तो उनकी महानता का कोई कारण शेष न रहता। दुर्गम पर्वतों पर उगने वाले वृक्ष ही विशाल आकार के और दीर्घजीवी होते हैं, जो फुलवारी नित्य सींची जाती है, वह कुछ ही दिन में मुरझाकर अपनी जीवन लीला समाप्त

कर देती है। जो व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र परिश्रमी और कष्ट सहिष्णु होता है वही विजय और उन्नति का वरण करता है। इतिहास बताता है कि जो जातियाँ सुखोपभोग में डूबीं, वे थोड़े ही समय में हतप्रभ होकर दीनता और दासता के गर्त में गिर पड़ीं।

हमारे पूर्वज कष्ट सहिष्णुता के महान लाभों से भली प्रकार परिचित थे इसलिए उन्होंने उसके अभ्यास को जीवन व्यवस्था में प्रमुख स्थान दिया था। तितिक्षा और तपश्चर्या के कार्यक्रम के अनुसार वे दु:खों से लड़ने का वैसा ही पूर्वाभ्यास करते थे जैसे युद्ध स्थल में लड़ने से पूर्व फौजी जवान को बहुत दिन तक युद्ध कौशल की शिक्षा प्राप्त करनी होती है। राजा-रईसों के बालक भी प्राचीन काल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए ऋषियों के गुरुकुलों में जाया करते थे और कठोर श्रमजीवी दिनचर्या को अपनाकर विद्याध्ययन करते थे। जैसे जलाशय को पार करने का अवसर मिलने पर तैराक को बड़ा उत्साह और आनंद होता है वैसे ही कष्ट सहिष्णु जीवन के अभ्यासी को नाना प्रकार की उलझनों और आपत्तियों को पार करने में अपने पौरुष और गौरव के विकास का उत्साहवर्द्धक अवसर दिखाई पड़ता है। इसके विपरीत जो लोग केवल सुख ही सुख को चाहते हैं वे अति सामान्य—रोजमर्रा के जीवन में आती रहने वाली घटनाओं से भी ऐसी घबराहट, चिंता, बेचैनी और पीड़ा अनुभव करते हैं मानो उनके सिर पर कोई भारी वज्र टूट पड़ा हो।

कठिनाइयाँ हर मनुष्य के जीवन में आती हैं, उनका आना अनिवार्य और आवश्यक है। प्रारब्ध कर्मों के भोग के बोझ को उतारने के ही लिए नहीं वरन मनुष्य की मनोभूमि और अंतरात्मा को सुदृढ़, तीक्ष्ण, पवित्र, प्रगतिशील, अनुभवी और विकसित करने के लिए भी कष्टों एवं आपत्तियों की भारी आवश्यकता है। जैसे भगवान मनुष्य को दया करके नाना प्रकार के उपहार दिया करते हैं, वैसे ही वे दु:ख और आपत्तियों का भी आयोजन करते हैं, जिससे मनुष्य का अज्ञान, अहंकार, आलस्य, अपवित्रता और व्यामोह नष्ट हो।

कठिनाइयाँ आने पर हतप्रभ, किंकर्त्तव्यविमूढ़ या कायर हो जाना और हाथ-पैर फुलाकर रोना-झींकना शुरू कर देना, अपने को या दूसरों को कोसना सर्वथा अनुचित है। यह तो भगवान की उस महान कृपा का तिरस्कार करना हुआ। इस प्रकार तो वह कठिनाई कुछ लाभ न दे सकेगी

वरन उलटे निराशा, कायरता, अवसाद, दीनता आदि का कारण बन जाएगी। कठिनाई देखकर डर जाना, प्रयत्न छोड़ बैठना, चिंता और शोक करना किसी सच्चे मनुष्य को शोभा नहीं देता। आपत्ति एक प्रकार से हमारे पुरुषार्थ की ईश्वरीय चुनौती है। जिसे स्वीकार करके ही हम प्रभु के प्रिय बन सकते हैं। अखाड़े के उस्ताद पहलवान नौसिखिए पहलवानों को कुश्ती लड़ना सिखाते हैं तो उन्हें पटक मार-मार कर दाव-पेच सिखाते हैं। नौसिखिए लोग पटक खाकर शोक संतप्त नहीं हो जाते वरन अपनी भूल को समझकर फिर उस्ताद से लड़ते हैं और धीरे-धीरे पूरे एवं पक्के पहलवान बन जाते हैं। ईश्वर ऐसा ही उस्ताद है जो आपत्तियों की पटक मार-मार कर हमारी अनेक अपूर्णताएँ दूर करके पूर्णता तक पहुँचाने की महान कृपा करता है।

कठिनाइयों से डरने या घबराने की कोई बात नहीं, वह तो इस सृष्टि का एक उपयोगी, आवश्यक एवं सार्वभौम विधान है। उनसे न तो दुखी होने की जरूरत है, न घबराने की और न किसी पर दोषारोपण करने की। हाँ, हर आपत्ति के बाद नए साहस और नए उत्साह के साथ उस परिस्थिति से लड़ने की और प्रतिकूलता को हटाकर अनुकूलता उत्पन्न करने के लिए प्रयत्नशीलता की आवश्यकता है। यह प्रयत्न आत्मा का धर्म है, इस धर्म को छोड़ने का अर्थ अपने को अधर्मी बनाना है। प्रयत्न की महिमा अपार है। आपत्ति द्वारा जो दुःख सहना पड़ता है उसकी अपेक्षा उसे विशेष समय में विशेष रूप से प्रयत्न करने का जो स्वर्ण अवसर मिला उसका महत्त्व अधिक है। प्रयत्नशीलता ही आत्मोन्नति का प्रधान साधन है जिसे आपत्तियाँ तीव्र गति से बढ़ाती हैं।

प्रयत्न, परिश्रम एवं कर्त्तव्यपालन से मनुष्य के गौरव एवं वैभव का विकास होता है। जो आनंदमय जीवन का रसास्वादन करना चाहता है उसे कठिनाइयों से निर्भय होकर अपने कर्त्तव्य पथ पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ हो जाना चाहिए और हँसते हुए हर स्थिति का मुकाबला करना चाहिए।

कठिनाइयों द्वारा आध्यात्मिक विकास

मनुष्य का आध्यात्मिक विकास सदा कठिनाइयों से लड़ते रहने से होता है। जो व्यक्ति जितना ही कठिनाइयों से भागता है, वह उतना ही अपने आप को निकम्मा बनाता है और जो उन्हें जितना ही आमंत्रित करता है, वह अपने आप को उतना ही योग्य बनाता है। मनुष्य जीवन की

सफलता उसकी इच्छाशक्ति के बल पर निर्भर करती है। जो व्यक्ति जितना ही यह बल रखता है, वह जीवन में उतना ही सफल होता है। इच्छाशक्ति का बल बढ़ाने के लिए सदा कठिनाइयों से लड़ते रहना आवश्यक है। जिस व्यक्ति को कठिनाइयों से लड़ने का अभ्यास रहता है वह नई कठिनाइयों के सामने आने से भयभीत नहीं होता, वह उनका जमकर सामना करता है। कायरता की मनोवृत्ति ही मनुष्य के लिए अधिक दु:खों का कारण होती है। शूरवीर की मनोवृत्ति ही दु:खों का अंत करती है। निर्बल मन का व्यक्ति सदा अभद्र कल्पनाएँ अपने मन में लाता है। उसके मन में भली कल्पनाएँ नहीं आतीं। वह अपने आप को चारों ओर से आपत्तियों से घिरा पाता है। अतएव अपने जीवन को सुखी बनाने का सर्वोत्तम उपाय कठिनाइयों से लड़ने के लिए सदा तत्पर रहना ही है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:

मनुष्य की कठिनाइयाँ दो प्रकार की होती हैं—एक बाहरी और दूसरी आंतरिक अर्थात भीतरी। साधारण मनुष्य की दृष्टि बाहरी कठिनाइयों की ओर ही जाती है, बिरले ही मनुष्य की दृष्टि भीतरी कठिनाइयों को देखने की क्षमता रखती है। पर वास्तव में मनुष्य की सच्ची कठिनाइयाँ आंतरिक हैं, बाहरी कठिनाइयाँ आंतरिक कठिनाइयों का आरोपण मात्र हैं। किसी भी प्रकार की परिस्थिति मनुष्य को लाभ अथवा हानि पहुँचा सकती है। अनुकूल परिस्थिति बुराई का काम कर सकती है और प्रतिकूल भलाई का। जो परिस्थिति मनुष्य को भयभीत करती है, वही वास्तव में उसकी हानि करती है। यदि परिस्थिति कठिन हुई और उससे मनुष्य भयभीत न हुआ तो वह मनुष्य की हानि न कर उसका लाभ ही करती है।

मनुष्य का मन आंतरिक चिंतन से बली होता है। जिस व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य का पूरा निश्चय है, जो उसको पूरा करने के लिए अपना सर्वस्व खोने के लिए तैयार रहता है उसे कोई भी परिस्थिति भयभीत नहीं करती। मनुष्य के मन में अपार शक्ति है। वह जितनी शक्ति की आवश्यकता अनुभव करता है उतनी शक्ति उसे अपने ही भीतर से ही मिल जाती है। जो व्यक्ति अपने आप को कर्त्तव्य दृष्टि से भारी संकटों में डालता रहता है, वह अपने भीतर अपार शक्ति की अनुभूति भी करने लगता है। उसे

अपने संकटों को पार करने के लिए असाधारण शक्ति भी मिल जाती है। जैसे-जैसे उसकी इस प्रकार की आंतरिक शक्ति की अनुभूति बढ़ती है उसकी कार्यक्षमता भी बढ़ती है।

जब कभी कोई मनुष्य अपने आप को कठिनाइयों में पड़े हुए पाता है तो उसे अपने कर्त्तव्य का ध्यान नहीं रहता। कर्त्तव्य का ध्यान न रखने पर वह बाहरी कठिनाइयों से घिर जाता है। कठिनाई में पड़े हुए व्यक्ति के कर्त्तव्य संबंधी विचार उलझे हुए रहते हैं। यदि किसी व्यक्ति की आंतरिक कठिनाइयाँ सुलझ जाएँ तो उसकी बाहरी कठिनाइयाँ भी सरलता से सुलझ जाएँगी। बाहरी और भीतरी कठिनाइयाँ एकदूसरे की सापेक्ष हैं। मनुष्य को अपने आप का ज्ञान बाहरी कठिनाइयाँ से लड़ने से होता है और जैसे-जैसे उसे अधिकाधिक ज्ञान होता है, वह बाहरी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने में भी समर्थ होता है।

प्रत्येक कठिनाई से भय की अनुभूति करने वाले व्यक्ति के मन में मानसिक अंतर्द्वंद की स्थिति बनी रहती है। इस अंतर्द्वंद के कारण मनुष्य की मानसिक शक्ति का एकीकरण नहीं होता, आपस में बँटवारा होने के कारण—व्यर्थ की लड़ाई हो जाने के कारण मनुष्य का मन निर्बल हो जाता है। ऐसी अवस्था में जब कोई बाहरी भारी कठिनाई उसके सामने आ जाती है तो वह अपनी मानसिक शक्ति को बटोर नहीं पाता और उससे भयाक्रांत हो जाता है। जिस प्रकार आंतरिक संघर्ष में उलझा रहने वाला राष्ट्र निर्बल होता है और बाहरी आपत्तियों का आवाहन करता है उसी प्रकार मानसिक अंतर्द्वंद वाले व्यक्ति जमकर बाह्य कठिनाइयों का सामना करें तो उनके आंतरिक मन में शांति प्राप्त हो जाए। निकम्मा मन ही शैतान की क्रियाशाला होता है। बाहरी कठिनाइयों के हल करने के प्रयत्न में अनेक कठिनाइयाँ अपने आप ही हल हो जाती हैं।

साधारणतः जो काम मनुष्य के हाथ में आ जाए और जिससे न केवल अपना ही लाभ हो वरन दूसरे का भी लाभ हो उसे छोड़ें न। वह काम पूरा करने के लिए जो त्याग और कष्ट सहने की आवश्यकता हो उसे सहे। यदि वह अपना अभ्यास इस तरह बना ले तो वह देखेगा कि उसे धीरे-धीरे ठोस आध्यात्मिक ज्ञान होता जाता है। जो ज्ञान मनुष्य को दार्शनिक चिंतन से नहीं आता वही ज्ञान उसे अपनी परिस्थितियों से लड़ने

से आ जाता है। जो मानसिक एकता और शांति राग-भोग से नहीं आती वही कठिनाइयों से लड़ने से अपने आप आ जाती है। कठिनाइयों से लड़ते रहना न केवल अपने जीवन को सफल बनाने के लिए आवश्यक है वरन दूसरे लोगों को भी प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक है। जिस प्रकार मनुष्य के दुर्गुण संक्रामक होते हैं उसी प्रकार सद्‌गुण भी संक्रामक होते हैं। एक कायर को रण से भागते देखकर दूसरे सैनिक भी रण से भाग पड़ते हैं और एक को रण में जमकर लड़ते देखकर दूसरे व्यक्ति भी हिम्मत नहीं छोड़ते। उनके भीतर भी वीरता का भाव जाग्रत हो जाता है। सभी मनुष्यों में सभी प्रकार के दुर्गुणों और सद्‌गुणों की भावना रहती है। मनुष्य जिस प्रकार के वातावरण में रहता है उसमें उसी प्रकार के मानसिक गुणों का आविर्भाव होता है। वीर पुरुष का चरित्र ही दूसरे लोगों के लिए शिक्षा है। यही उसकी समाज को सबसे बड़ी देन होती है।

कठिनाइयाँ हमारी उन्नति में सहायक होती हैं

साधारण लोग कठिनाइयों को दुर्भाग्य की बात समझते हैं। जिन लोगों ने किसी संपन्न परिवार में जन्म लिया है, वे तो हर तरह की असुविधा से ही बहुत घबड़ाते हैं और यही अभिलाषा किया करते हैं कि उनकी समस्त आवश्यकताएँ बिना किसी दिक्कत के यथासमय पूर्ण होती रहें। अन्य लोग भी ऐसे व्यक्तियों को बड़ा 'भाग्यवान' समझते हैं। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। जिन लोगों ने कभी जीवन की कठोरता के दर्शन नहीं किए हैं, वे अनेक दृष्टियों से कच्चे रह जाते हैं। इसलिए भगवान ने जहाँ सुखों की सृष्टि की है, वहाँ दुःखों और कठिनाइयों की रचना भी कर दी है। इनका अनुभव हुए बिना मनुष्य अपूर्ण रह जाता है और उसका उचित विकास नहीं हो पाता।

भगवान को दयासिंधु एवं करुणासागर कहा जाता है। उनके वात्सल्य, दान और उपकार का कोई अंत नहीं। साधारण प्राणियों का जब अपनी कृतियों पर, अपनी संतति पर इतना ममत्व होता है तो उस महान प्रभु का अपने बालकों पर कितना स्नेह होगा, इसकी कल्पना करना भी सहज नहीं है। चित्रकार अपने चित्र को, माली अपने बाग को, मूर्तिकार अपनी मूर्ति को, किसान अपने खेत को, गड़रिया अपनी भेड़ों को अच्छी, उन्नत,

विकसित स्थिति में रखना चाहता है। उन्हें अच्छी स्थिति में देखकर प्रसन्न होता है, फिर परमात्मा अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना मनुष्य को अच्छी स्थिति में न रखना चाहे, ऐसा नहीं हो सकता है। निश्चय ही प्रभु का यह प्रयत्न निरंतर रहता है कि हम सब सुखी एवं सुविकसित हों। उनकी दया और करुणा निरंतर हमारे ऊपर बरसती रहे।

इतना होते हुए भी देखा जाता है कि कितने ही मनुष्य अत्यंत दुखी हैं। उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट और अभाव सता रहे हैं। भय, पीड़ा वियोग, त्रास, अन्याय एवं अभाव से संत्रस्त हुए कितने ही व्यक्ति बुरी तरह दुःख के सागर में गोते लगा रहे हैं। किसी-किसी पर ऐसी आकस्मिक विपत्ति आती है कि देखने वालों का हृदय दहल जाता है। ऐसे अवसरों पर ईश्वर की दयालुता पर संदेह होने लगता है, कई बार तो कष्टों को दैवी कोप, ईश्वरीय निष्ठुरता मान लिया जाता है। परंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। प्रभु एक क्षणभर के लिए भी रुक नहीं सकता। जिसे हम विपत्ति समझते हैं, वह भी एक प्रकार से उनकी दया ही होती है।

माता का अपने बच्चे पर असाधारण प्यार होता है, वह उसे सुखी बनाने के लिए अपनी समझ के अनुसार कोई बात उठा नहीं रखती, तो भी उसके कई कार्य ऐसे हैं जो बालक को अप्रिय होते हैं। बालक किसी स्वादिष्ट भोजन को बहुत अधिक मात्रा में खाना चाहता है, माता जानती है कि अधिक खाने से यह बीमार पड़ जाएगा इसलिए वह बच्चे के रूठने, रोने, हाथ-पाँव पीटने की कुछ भी परवाह न करके उतना ही खाने देती है जितना कि आवश्यक है। आग, हथियार, बारूद आदि से बच्चे को दूर रखा जाता है, वह उनसे खेलना चाहे तो बलपूर्वक रोक दिया जाता है। घर के पशुओं के साथ खेलना चाहे तो भी उसे रोका जाता है ताकि उनके पैरों की चपेट में आकर कहीं कुचल न जाए। बच्चा खिड़की, छज्जों में से बाहर की ओर झुककर देखना चाहे तो उसकी स्वाधीनता को तुरंत रोक दिया जाता है। कोई अनुचित काम करने पर चपत भी लगाई जाती है और डराने के लिए कोठरी में भी बंद कर दिया जाता है। कई बार उसे मुर्गा बनाने, धूप में खड़ा होने, कान पकड़कर उठने-बैठने, भूखा रहने आदि की सजा दी जाती है। बीमार होने पर माता उसे कड़ुई दवा जबरदस्ती पिलाती है और उसके कष्ट की परवाह न करके आवश्यक होने पर इंजेक्शन या ऑपरेशन कराने के लिए भी छाती कड़ी करके तैयार हो जाती है।

बालक समझता है कि माता बड़ी निष्ठुर है, मुझे अमुक वस्तु नहीं देती, अमुक प्रकार सताती है और अमुक कष्ट पड़ने पर भी मेरी सहायता नहीं करती। अल्पज्ञान के कारण वह माता के प्रति अपने मन में दुर्भावना ला सकता है, उस पर निष्ठुरता का दोषारोपण कर सकता है, पर निश्चय ही उसकी मान्यता भ्रमपूर्ण होती है। यदि वह माता के हृदय को देख सकता तो उसे प्रतीत होता कि उसमें कितनी अपार करुणा भरी हुई है और कितना ऊँचा वात्सल्य उसमें हिलोरें ले रहा है। यदि इतना वात्सल्य उसमें न होता तो उसके हितसाधन के लिए बच्चे के कष्ट के समय होने वाले अपने दुःख को, वह किस प्रकार छाती कड़ी करके सहन करती?

माता के दुलार के तरीके दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिनसे बालक प्रसन्न होता है। जब उसे मिठाई, खिलौने, बढ़िया कपड़े आदि दिए जाते हैं और सैर कराने या तमाशे दिखाने ले जाया जाता है, तो बालक प्रसन्न होता है और सोचता है कि मेरी माता कितनी अच्छी है। परंतु जब माता काजल लगाने के लिए हाथ पकड़कर जबरदस्ती करती है, जबरदस्ती नहलाती है, स्कूल जाने के लिए कमची फटकारकर विवश करती है तो बच्चा झल्लाता है और माता को कोसता है। बालबुद्धि नहीं जानती कि कभी मधुर, कभी कठोर व्यवहार उसके साथ क्यों किया जाता है। वह माता के वात्सल्य पर शंका करता है, जो वस्तुस्थिति को जानते हैं उन्हें पता है कि माता बच्चे के प्रति केवल उपकार का व्यवहार ही कर सकती है। मधुर और कठोर दोनों ही व्यवहारों में वात्सल्य भरा होता है। प्रभु की कृपा भी दो प्रकार की होती है—एक सुख और दूसरी दुःख। दोनों में ही हमारा हित और उसका स्नेह भरा होता है। अल्पज्ञता उस वस्तुस्थिति से हमें परिचित नहीं होने देती, पर भगवान की जब कृपा होती है, सद्बुद्धि का हृदय में प्रकाश हो जाता है, तो 'कष्ट' नाम की दुःख देने वाली कोई वस्तु शेष नहीं रहती। कठोर एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ एक भिन्न प्रकार का दैवी उपहार प्रतीत होती हैं और उनसे डरने या दुखी होने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

सुख से मनुष्य को कई लाभ हैं, चित्त प्रसन्न रहता है, इंद्रियाँ तृप्त होती हैं, मन में उत्साह रहता है, उन्नति करने में सुविधा रहती है, मित्र बढ़ जाते हैं, साहस बढ़ता है, मान-बड़ाई के अवसर मिलते हैं। इस

प्रकार के और भी लाभ सुख में होते हैं, परंतु दुःख के लाभ भी कम लाभ नहीं हैं। दुःख से मनुष्य की सोई हुई प्रतिभा का विकास होता है, कष्ट से त्राण पाने के लिए मन के सब कलपुरजे बड़ी तत्परता से क्रियाशील होते हैं, शरीर भी आलस्य छोड़कर कर्मनिष्ठ हो जाता है। घोड़े को अच्छी चाल सिखाने वाले सईस उसके पुट्ठे पर हंटर फटकारते हैं जिससे घोड़ा उत्तेजित होकर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता है, इसी समय लगाम के इशारे से उसे बढ़िया चाल चलाने का अभ्यास कराया जाता है। दुःख, एक प्रकार का हंटर है जो हमारी शिथिल हुई शारीरिक और मानसिक शक्तियों को भड़काकर क्रियाशील बनाता है और साथ ही धर्माचरण की शिक्षा देकर सही चाल चलना सिखाता है।

फोड़ा चिर जाने से उसमें भरा हुआ मवाद निकल जाता है, दस्त हो जाने से पेट में संचित मल की शुद्धि हो जाती है, लंघन हो जाने से कोष्ठ गत दोषों का शमन हो जाता है। दुःख आ जाने से संचित पाप का भार उतर जाता है और अंतश्चेतना बड़ी शुद्ध, निर्मल एवं हलकी हो जाती है। सोने को अग्नि में डालने से उसके साथ चिपटे हुए दूषित पदार्थ छूट जाते हैं और कांतिमान तथा तपा हुआ शुद्ध स्वर्ण प्रत्यक्ष हो जाता है। मनुष्य की कितनी ही बुराइयाँ, बुरी आदतें, दूषित भावनाएँ और विचारधाराएँ तब तक नहीं छूटतीं जब तक वह किसी विपत्ति में नहीं पड़ता। कुदरत का एक बड़ा तमाचा खाकर उस बेहोश को होश आता है और तब वह उस बेढंगी चाल को सँभालता है। जो ज्ञान बड़े-बड़े उपदेशों, प्रवचनों और कथाओं के सुनने से नहीं होता, वह विपत्ति की एक दुलत्ती खा लेने पर बड़ी सरलता से हृदयंगम हो जाता है, इस प्रकार कई बार काल दंड का एक आघात, हजार ज्ञानी गुरुओं से अधिक शिक्षा दे जाता है।

सुख में जहाँ अनेक अच्छाइयाँ हैं, वहाँ यह एक भारी बुराई भी है कि मनुष्य उन सुख-साधनों को सत्कर्म बढ़ाने में लगाने का सदुपयोग भूलकर, ऐश उड़ाने, अहंकार में डूब जाने, अधिक जोड़ने के कुचक्र में पड़ जाता है। उसके समय का अधिकांश भाग तुच्छ स्वार्थों में लगा रहता है। परमार्थ की ओर से वह प्रायः पीठ ही फेर लेता है। इस बुरी स्थिति से अपने पुत्र को बचाने के लिए ईश्वर उसकी धन-संपत्ति छीन लेते हैं, पढ़ने से जी चुराकर हर घड़ी खिलौने से उलझे रहने वाले बालक के खिलौने

जैसे माता छीनकर छिपा देती है वैसे ही धन, संतान, स्त्री, वैभव आदि के खेल-खिलौनों को छीनकर ईश्वर हमें यह प्रेरणा देता है कि इस झंझट की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य आपके लिए करने को पड़ा हुआ है। 'खेल छोड़ो और स्कूल जाओ' की शिक्षा के लिए कई बार हानि का, आपत्ति का दैवी आयोजन होता है।

कितनी ही उच्च आत्माएँ तप रूपी कष्ट को अपना परम मित्र और विश्व-कल्याण का मूल समझकर उसे स्वेच्छापूर्वक छाती से लगाती हैं। इससे उनकी कीर्ति अजर-अमर हो जाती है और उस तप की अग्नि युग-युगांतरों तक जनता को प्रकाश देती रहती है। हरिश्चंद्र, प्रह्लाद, शिवि, मोरध्वज, दधीचि, प्रताप, शिवाजी, हकीकतराय, वंदावैरागी, भगीरथ, गौतम बुद्ध, ईसा मसीह आदि ने जो कष्ट सहे, वे उनने स्वेच्छापूर्वक शिरोधार्य किए थे। यदि वे अपनी गतिविधि में थोड़ा सा परिवर्तन कर लेते तो उन आपत्तियों से सहज ही बच सकते थे। पर उनने देखा कि यह कष्ट या हानि उस महान लाभ की तुलना में तुच्छ है इसलिए उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपने कष्टसाध्य मार्ग पर दृढ़ रहना उचित समझा। दूसरे लोग यह कल्पना कर सकते हैं कि उन्होंने बड़े कष्ट सहे, पर यदि उनकी मनोभूमि का कोई ठीक प्रकार परिचय प्राप्त कर सकेगा तो उसे प्रतीत होगा कि उनकी अंतरात्मा प्रसन्नतापूर्वक उस सबको सहन कर रही थी।

भगवान जिसे अपनी शरण में लेते हैं, जिसे बंधन-मुक्त करना चाहते हैं, उसके अनिवार्य कर्म भोगों को जल्दी-जल्दी भुगतवाकर उसे ऐसा ऋण मुक्त बना देते हैं कि भविष्य के लिए कोई बंधन शेष न रहे और भक्त को फिर जन्म-मरण के चक्र में न जाना पड़े। एक ओर तो विपत्ति द्वारा प्रारब्ध भोग समाप्त हो जाते हैं दूसरी ओर उसकी आंतरिक पवित्रता बहुत बढ़ती है। इन उभयपक्षीय लाभों से वह बड़ी गति से परम लक्ष्य की ओर प्रगति करता है। तपस्वी लोग ऐसे कष्टों को प्रयत्नपूर्वक अपने ऊपर आमंत्रित करते हैं ताकि उनकी लक्ष्य यात्रा शीघ्र पूरी हो जाए।

साधारणतः अनेक सद्गुणों के विकास के लिए भगवान समय-समय पर अनेक कटु अनुभव कराते हैं। बच्चे की मृत्यु होने पर उसके शोक में 'वात्सल्य' का हृदयगत परम सात्विक तत्त्व उमड़ता है जिसके कारण वह अन्य बालकों पर अधिक प्रेम करना सीखता है। देखा गया है

कि जिसकी पहली पत्नी गुजर जाती है, वह अपनी दूसरी पत्नी से अधिक सद्‌व्यवहार करता है क्योंकि एक पत्नी खो देने के कारण जो भावोद्रेक मन में हुआ उसके कारण दांपत्य कर्त्तव्यों का उसे ज्ञान हुआ है और अपने प्रथम दांपत्य की अपेक्षा दूसरे दांपत्य जीवन में अधिक सफल सिद्ध होता है, एक वियोग उसे उस खोई हुई वस्तु के महत्त्व को भली प्रकार हृदयंगम करा देता है। धन खोकर मनुष्य यह सीखता है कि धन का सदुपयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए? रोगी हो जाने पर आदमी यह जान पाता है कि संयत आहार-विहार का क्या महत्त्व है? गाली देने पर जिसका मुँह पिट जाता है उसी को यह अक्ल आती है कि गाली देना बुरी बात है। जिसको अत्याचार सहना पड़ा है वही जानता है कि दूसरों पर यदि जुल्म करूँ तो उन्हें कितना कष्ट होगा? जब हम आपत्तिग्रस्त होकर दूसरों की सहायता के लिए हाथ पसारते हैं और दीन नेत्रों से दूसरों की ओर ताकते हैं, तब यह पता चलता है कि दूसरे दुखियों की सहायता करना हमारे लिए भी कितना आवश्यक कर्त्तव्य है?

धैर्य एक महत्त्वपूर्ण गुण है?

संसार में रहते हुए विपरीत परिस्थितियाँ अथवा आपत्तियाँ आना स्वाभाविक है। विशेषकर यदि हम कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं तो उसमें अनेक कठिनाइयों का मुकाबला करना अनिवार्य ही समझना चाहिए। अनेक व्यक्ति ऐसे ही भय के कारण कभी किसी भारी काम में हाथ नहीं डालते। संभव है वे इस जीवन में आपत्तियों से बच जाएँ, पर वे किसी प्रकार की प्रगति, उन्नति भी नहीं कर सकते और एक तत्त्वदर्शी की निगाह में उनका जीवन कीड़े-मकोड़ों से बढ़कर नहीं होता।

जिसने शरीर धारण किया है उसे सुख-दु:ख दोनों का ही अनुभव करना होगा। शरीरधारियों को केवल सुख ही सुख या केवल दु:ख कभी प्राप्त नहीं हो सकता। जब यही बात है कि शरीर धारण करने पर सुख-दु:ख दोनों का ही भोग करना है, तो फिर दु:ख में अधिक उद्विग्न क्यों हुआ जाए? दु:ख-सुख तो शरीर के साथ लगे ही रहते हैं। हम धैर्य धारण करके उनकी प्रगति को ही क्यों न देखते रहें! जिन्होंने इस रहस्य को समझकर धैर्य का आश्रय ग्रहण कर लिया है, संसार में वे ही सुखी समझे जाते हैं। दु:खों की भयंकरता को देखकर विचलित होना प्राणियों

का स्वभाव है। किंतु जो ऐसे समय में भी विचलित नहीं होता वही 'पुरुषसिंह' धैर्यवान कहलाता है। आखिर हम अधीर होते क्यों हैं? इसका कारण हमारे हृदय की कमजोरी के सिवा और कुछ भी नहीं है। इस बात को सब कोई जानते हैं कि आज तक संसार में ब्रह्मा से लेकर कृमि–कीट पर्यंत संपूर्ण रूप से सुखी कोई भी नहीं हुआ। सभी को कुछ न कुछ दुःख अवश्य हुए हैं। फिर भी मनुष्य दुःखों के आगमन से व्याकुल होता है, तो यह कमजोरी ही कही जा सकती है। महापुरुषों के सिर पर सींग नहीं होते, वे भी हमारी तरह दो हाथ और दो पैर वाले साढ़े तीन हाथ के मनुष्याकार जीव होते हैं। किंतु उनमें यही विशेषता होती है कि दुःखों के आने पर वे हमारी तरह अधीर नहीं हो जाते। उन्हें प्रारब्ध कर्मों का भोग समझकर वे प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हैं। पांडव दुःखों से कातर होकर अपने भाइयों के दास बन गए होते, मोरध्वज पुत्र शोक से दुखी होकर मर गए होते, हरिश्चंद्र राज्यलोभ से अपने वचनों से फिर गए होते, श्री रामचंद्र वन के दुःखों की भयंकरता से घबराकर अयोध्यापुरी में रह गए होते, शिवि राजा ने यदि शरीर के कटने के दुःखों से कातर होकर कबूतर को बाज के लिए दे दिया होता, तो इनका नाम अब तक कौन जानता? वे भी असंख्य नरपतियों की भाँति काल के गाल में चले गए होते, किंतु इनका नाम अभी तक ज्यों का त्यों ही जीवित है, इसका एकमात्र कारण उनका धैर्य ही है।

अपने प्रियजन के वियोग से हम अधीर हो जाते हैं। क्योंकि वह हमें छोड़कर चल दिया। इस विषय में अधीर होने से क्या काम चलेगा? क्या वह हमारी अधीरता को देखकर लौट आवेगा? यदि नहीं, तो हमारा अधीर होना व्यर्थ है। फिर हमारे अधीर होने का कोई समुचित कारण भी तो नहीं। क्योंकि जिसने जन्म धारण किया है, उसे मरना तो एक दिन है ही। जो जन्मा है वह मरेगा भी। संपूर्ण सृष्टि के पितामह ब्रह्मा हैं, चराचर सृष्टि उन्हीं से उत्पन्न हुई है। अपनी आयु समाप्त होने पर वे भी नहीं रहते। क्योंकि वे भी भगवान विष्णु के नाभि कमल से उत्पन्न हुए हैं। अतः महाप्रलय में वे भी विष्णु के शरीर में अंतर्निहित हो जाते हैं। यह अटल सिद्धांत है कि जायमान वस्तु का नाश होगा ही, तो फिर तुम उस अपने प्रिय का शोक क्यों करते हो? उसे तो मरना ही था, आज नहीं तो

कल और कल नहीं तो परसों। सदा कोई जीवित रहा भी है, जो वह रहता? जहाँ से आया था चला गया? एक दिन तुम्हें भी जाना है। जो दिन शेष हैं, उन्हें धैर्य के साथ उस गुणागार के गुणों के चिंतन में बिताओ। शरीर व्याधियों का घर है। जाति, आयु, भोग को साथ लेकर ही तो यह शरीर उत्पन्न हुआ है। पूर्व जन्म के जो भोग हैं, वे तो भोगने ही पड़ेंगे।

दान-पुण्य, जप-तप और औषधि उपचार करो अवश्य, किंतु उनसे आराम न होने पर अधीर मत हो जाओ। क्योंकि भोग की समाप्ति में ही, दान, पुण्य और औषधि कारण बन जाते हैं। बिना कारण के कार्य नहीं होता, तुम्हें क्या पता कि तुम्हारी व्याधि के नाश में क्या कारण बनेगा? इसलिए आर्य पुरुषों ने शास्त्र में जो उपाय बताए हैं उन्हें ही करो। साथ ही धैर्य भी धारण किए रहो। धैर्य से तुम व्याधियों के चक्कर से सुखपूर्वक छूट सकोगे।

जीवन की आवश्यक वस्तुएँ जब नहीं प्राप्त होती हैं तो हम अधीर हो जाते हैं। हाँ! घर में कल को खाने के लिए मुट्ठी भर अन्न नहीं है, स्त्री की साड़ी बिलकुल चिथड़ा बन गई है, बच्चा भयंकर बीमारी में पड़ा हुआ है। उसकी दवा-दारू का कुछ भी प्रबंध नहीं। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? इन्हीं विचारों में विकल हुए हम रात-रात भर रोया करते हैं और हमारी आँखें सूज जाती हैं। ऐसा करने से न तो अन्न ही आ जाता है और न स्त्री की साड़ी ही नई हो जाती है। बच्चे की भी दशा नहीं बदलती। सोचना चाहिए हमारे ही ऊपर ऐसी विपत्तियाँ हैं, सो नहीं। विपत्तियों का शिकार किसे नहीं बनना पड़ा? त्रिलोकेश इंद्र, ब्रह्महत्या के भय से वर्षों घोर अंधकार में पड़े रहे। चक्रवर्ती महाराज हरिश्चंद्र डोम के घर जाकर नौकरी करते रहे। उनकी स्त्री अपने मृत बच्चे को जलाने के लिए कफन तक नहीं प्राप्त कर सकी। जगत के आदि कारण मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्रजी को चौदह वर्षों तक घोर जंगलों में रहना पड़ा। वे अपने पिता चक्रवर्ती महाराज दशरथ को पाव भर आटे के पिंड भी न दे सके। जंगल के इंगुदी फलों के पिंडों से ही उन्होंने चक्रवर्ती राजा की तृप्ति की।

शरीरधारी कोई भी ऐसा नहीं है जिसने विपत्तियों के कड़वे फलों का स्वाद न चखा हो। सभी उन अवश्य प्राप्त होने वाले कर्मों के स्वाद से

परिचित हैं। फिर हम अधीर क्यों हों? हमारे अधीर होने से हमारे आश्रित भी दुखी होंगे, इसलिए हम धैर्य धारण करके क्यों नहीं उन्हें समझावें? जो होना है, होगा। बस, विवेकी और अविवेकी में यही अंतर है। जरा, मृत्यु और व्याधियाँ दोनों को ही होती है किंतु विवेकी उन्हें अवश्यंभावी समझकर धैर्य के साथ सहन करता है और अज्ञानी विकल होकर विपत्तियों को और बढ़ा लेता है—महात्मा कबीर ने इस विषय पर क्या ही उपयुक्त बात कही है।

ज्ञानी काटे ज्ञान से, अज्ञानी काटे रोय।
मौत, बुढ़ापा आपदा, सब काहू को होय।।

जो धैर्य का आश्रय नहीं लेते, वे दीन हो जाते हैं, परमुखापेक्षी बन जाते हैं। इससे वे और भी दुखी होते हैं। संसार में परममुखापेक्षी बनना, दूसरे के सामने जाकर गिड़गिड़ाना, दूसरे से किसी प्रकार की आशा करना, इससे बढ़कर दूसरा कष्ट और कोई नहीं है। इसलिए विपत्ति आने पर धैर्य धारण किए रहिए और विपत्ति के कारणों को दूर करने एवं सुविधा प्राप्त करने के प्रयत्न में लग जाइए। जितनी शक्ति अधीर होकर दुखी होने में खरच होती है उससे आधी शक्ति भी प्रयत्न में लगा दी जाए तो हमारी अधिकांश कठिनाइयों के निवारण का हल निकल सकता है।

प्रत्येक परिस्थिति में आगे बढ़िए

मनुष्य जीवन उन्नति करने के लिए है। कहने के लिए संसार में शेर, हाथी, सर्प आदि मनुष्य से कहीं अधिक शक्तिशाली प्राणी मौजूद हैं, पर अन्य किसी प्राणी में वह विवेक शक्ति नहीं पाई जाती जिससे भलाई-बुराई, लाभ-हानि का निर्णय करके उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हुआ जा सके। संसार के अन्य समस्त प्राणी प्रकृति द्वारा निर्मित एक छोटे से दायरे में ही जीवन-यापन करते हैं। यह विशेषता केवल मनुष्य को ही प्राप्त है कि वह इच्छानुसार नये-नये मार्ग खोजकर अगम्य स्थलों पर जा पहुँचता है और महत्त्वपूर्ण कार्यों को संपादित करता है। जो लोग ऐसी श्रेष्ठ मनुष्य-योनि को पाकर भी उन्नति के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ते, वे वास्तव में बड़े अभागे हैं।

'अगर मुझे अमुक सुविधाएँ मिलती तो मैं ऐसा करता' इस प्रकार की बातें करने वाले एक झूठी आत्मप्रवंचना किया करते हैं। अपनी नालायकी को भाग्य के ऊपर, ईश्वर के ऊपर थोपकर खुद निर्दोष बनना

चाहते हैं। यह एक असंभव मांग है कि यदि मुझे अमुक परिस्थिति मिलती तो ऐसा करता। जैसी परिस्थिति की कल्पना की जा रही है यदि वैसी मिल जाए तो वे भी अपूर्ण मालूम पड़ेंगी और उससे अच्छी स्थिति का अभाव प्रतीत होगा। जिन लोगों को धन, विद्या, मित्र, पद आदि पर्याप्त मात्रा में मिले हुए हैं, देखते हैं कि उनमें से भी अनेकों का जीवन बहुत अस्तव्यस्त और असंतोषजनक स्थिति में पड़ा हुआ है। धन आदि का होना उनके आनंद की वृद्धि न कर सका वरन जी का जंजाल बन गया। जो सर्पविद्या नहीं जानता उसके पास बहुत साँप होना भी खतरनाक है। जिसे जीवन-कला का ज्ञान नहीं, उसे गरीबी में अभावग्रस्त अवस्था में थोड़ा-बहुत आनंद तब भी है, यदि वह संपन्न होता तो उन संपत्तियों का दुरुपयोग करके अपने को और भी अधिक विपत्तिग्रस्त बना लेता।

यदि आपके पास आज मनचाही वस्तुएँ नहीं हैं, तो निराश होने की कुछ आवश्यकता नहीं है। टूटी-फूटी चीजें हैं उन्हीं की सहायता से अपनी कला को प्रदर्शित करना प्रारंभ कर दीजिए। जब चारों ओर घोर घना अंधकार छाया हुआ होता है तो वह दीपक जिसमें छदाम का दिया, आधे पैसे का तेल और दमड़ी की बत्ती है—कुल मिलाकर एक पैसे की भी पूँजी नहीं है—चमकता है और अपने प्रकाश से लोगों के रुके हुए कामों को चालू कर देता है। जबकि हजारों के मूल्य वाली वस्तुएँ चुपचाप पड़ी होती हैं, यह एक पैसे की पूँजी वाला दीपक प्रकाशवान होता है, अपनी महत्ता प्रकट करता है, लोगों का प्यारा बनता है, प्रशंसित होता है और अपने अस्तित्व को धन्य बनाता है। क्या दीपक ने कभी ऐसा रोना रोया कि मेरे आकार होता तो ऐसा बड़ा प्रकाश करता? दीपक को कर्महीन नालायकों की भाँति बेकार-- शेखचिल्लियों के से मनसूबे बाँधने की फुरसत नहीं है, वह अपनी आज की परिस्थिति, हैसियत, औकात को देखता है, उसका आदर करता है और अपनी केवल मात्र एक पैसे की पूँजी से कार्य आरंभ कर देता है। उसका कार्य छोटा है बेशक, पर उस छोटेपन में भी सफलता का उतना ही अंश है जितना कि सूर्य और चंद्र के चमकने की सफलता में है। यदि आंतरिक संतोष, धर्म, मर्यादा और परोपकार की दृष्टि से तुलना की जाए तो अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार दोनों का ही कार्य एकसा है। दोनों का ही महत्त्व समान है, दोनों की सफलता एकसी है।

सच बात तो यह है कि अभावग्रस्त और कठिनाइयों में पले हुए, साधनहीन व्यक्ति ही संसार के नेता, महात्मा, महापुरुष, सफल जीवन, मुक्तिपथगामी हुए हैं। कारण यह है कि विपरीत परिस्थितियों से टकराने पर मनुष्य की अंत:प्रतिभा जाग्रत होती है, सुप्त शक्तियों का विकास होता है। पत्थर पर रगड़ खाने वाला चाकू तेज होता है और वह अपने काम में अधिक कारगर साबित होता है, उसका स्वभाव, अनुभव और दिमाग मँजकर साफ हो जाता है जिससे आगे बढ़ने में उसे बहुत सफलता मिलती है। इसके विपरीत जो लोग अमीर और साधन संपन्न घरों में पैदा होते हैं उन्हें जीवन की आवश्यक सामग्रियाँ प्राप्त करने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता। लाड़, दुलार, ऐश, आराम के कारण उनकी प्रतिभा निखरती नहीं, वरन बंद पानी की तरह सड़ जाती है, यह निष्क्रिय चाकू की तरह जंग लगकर निकम्मी हो जाती है। आमतौर पर आजकल ऐसा देखा जाता है कि अमीरों के लड़के अपने जीवन में असफल रहते हैं और गरीबों के लड़के आगे चलकर चमक जाते हैं। पुराने जमाने में राजा-रईस अपने लड़कों को ऋषियों के आश्रम में इसलिए भेज देते थे कि वहाँ रहकर अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करें और अपनी प्रतिभा को तीव्र बनावें।

हमारा उद्देश्य यह कहने का नहीं है कि अमीरी कोई बुरी चीज है और अमीरों के घर में पैदा होने वाले उन्नत जीवन नहीं बिता सकते। जहाँ साधन हैं वहाँ तो और भी जल्दी उन्नति होनी चाहिए। बढ़ई के पास बढ़िया लकड़ी और अच्छे औजार हों, तब तो वह बहुत ही सुंदर फर्नीचर तैयार करेगा, यह तो निश्चित है। हमारा तात्पर्य केवल यह कहने का है कि यदि जिंदगी जीने की कला आती हो, तो अभाव, कठिनाई या विपरीत परिस्थिति भी कुछ बाधा नहीं डाल सकती। गरीबी या कठिनाई में साधनों की कमी का दोष है तो प्रतिभा को चमकाने का गुण भी है। अमीरी में साधनों की बाहुल्यता है तो लाड़-दुलार और ऐश आराम के कारण प्रतिभा के कुंद हो जाने का दोष भी है। दोनों ही गुण-दोषयुक्त हैं। किंतु जो जीवन जीना जानता है, वह चाहे अमीर हो या गरीब, अच्छी परिस्थितियों में हो या कठिनाइयों में पड़ा हो, कुछ भी क्यों न हो, हर एक स्थिति में अनुकूलता पैदा कर सकता है और हर अवस्था में उन्नति, सफलता तथा आनंद प्राप्त कर सकता है।

आनंदमय जीवन बिताने के लिए धन, विद्या, अच्छा सहयोग, स्वास्थ्य आदि की आवश्यकता है। परंतु ऐसा न समझना चाहिए कि इन वस्तुओं के होने से ही जीवन आनंदमय बन सकता है। एक अच्छी पुस्तक लिखने के लिए कागज, दवात, कलम की आवश्यकता है, परंतु इन तीनों के इकट्ठे हो जाने से ही पुस्तक तैयार नहीं हो सकती, बुद्धिमान लेखक ही उत्तम पुस्तक के निर्माण में प्रमुख है, दवात, कलम, कागज तो एक गौण और छोटी वस्तु है। जिसे पुस्तक लिखने की योग्यता है उसका काम रुका न रहेगा, इन वस्तुओं को वह बहुत ही आसानी से इकट्ठी कर लेगा। आज तक एक भी घटना किसी ने ऐसी न सुनी होगी कि अमुक लेखक इसलिए रचनाएँ न कर सका कि उसकी दवात में स्याही न थी। अगर कोई लेखक यों कहें—"क्या करूँ साहब मेरे पास कलम ही न थी, यदि कलम होती तो बहुत बढ़िया ग्रंथ लिख देता।" तो उसकी इस बात पर कोई विश्वास न करेगा। भला कलम भी कोई ऐसी दुष्प्राप्य वस्तु है जिसे लेखक प्राप्त न कर सके। एक कहावत है "नाच न जानें आँगन टेढ़ा।" जिसे नाचना नहीं आता वह अपनी अयोग्यता को यह कहकर छिपाता है कि क्या करूँ आँगन टेढ़ा है। टेढ़ा ही सही, जिसे नाचना आता है उसके लिए टेढ़ेपन के कारण कुछ विशेष अड़चन पड़ने की कोई बात नहीं है। इसी प्रकार जो जीवन की विद्या जानता है उसे साधनों का अभाव और विपरीत परिस्थितियों की शिकायत करने की कोई बात नहीं है। साधनों की आवश्यकता है, बेशक, परंतु इतनी नहीं कि उनके बिना प्रगति ही न हो सके।

चतुर पुरुष विपरीतता में अनुकूलता पैदा कर लेते हैं, विष को अमृत बना लेते हैं। संखिया, कुचला, धतूरा, पारा, गुग्गुल, हरताल आदि प्राणघातक विषों से लोग रोगनाशक, आयुवर्द्धक, रसायनें बनाते हैं। बाल में से चाँदी, कोयले में से हीरा निकालते हैं। सर्पों की विषथैली में से मणि प्राप्त करते हैं, धरती की शुष्क और कठोर तह को खोदकर शीतल जल निकालते हैं, गरजते समुद्र के पेट में घुसकर मोती लाते हैं। दृष्टि पसारकर देखिए आपको चारों ओर ऐसे कलाकार बिखरे हुए दिखाई पड़ेंगे, जो तुच्छ चीजों की सहायता से बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं, ऐसे वीर पुरुषों की कमी नहीं है जो वज्र जैसी निष्ठुर परिस्थिति में प्रवेश करके विजयलक्ष्मी

का वरण करते हैं। यदि आपकी इच्छाशक्ति जरा वजनदार हो तो आप भी इन्हीं कलाकारों और वीर पुरुषों की श्रेणी में सम्मिलित होकर अपनी आज की सारी शिकायतें, चिंताएँ, विवशताएँ आसानी के साथ संतोष, आशा और समर्थता में बदल सकते हैं।

आपत्तियों से चिंतित न हों

अनेक व्यक्ति आपत्तियों से इतने भयभीत रहते हैं कि वे तरह-तरह की सच्ची और झूठी आपत्तियों की कल्पना करके अपने जीवन को चिंताग्रस्त बना लेते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो भूतकाल की गुजरी हुई घटनाओं और भविष्यकाल की भली-बुरी संभावनाओं के लिए व्याकुल होना निरर्थक है। पर ये व्यक्ति प्राय: वर्तमान का ख्याल छोड़कर पुरानी घटनाओं का ही रोना रोया करते हैं अथवा भविष्यकाल में आने वाली संभावित कठिनाइयों की कल्पना करके डरते रहते हैं। ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ बुद्धिहीनता और डरपोकपन की परिचायक हैं। पुरानी या नई, कैसी भी आपत्तियों के कारण चिंता करना सब तरह से हानिकारक है। इसमें हमारी बहुत-सी शक्ति व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है और हम अपने सम्मुख उपस्थित वास्तविक समस्याओं को हल करने में भी असमर्थ हो जाते हैं।

चिंता, मन में केंद्रीभूत नाना दु:खद स्मृतियाँ तथा भावी भय की आशंका से उत्पन्न मानवमात्र का सर्वनाश करने वाला, उसकी मानसिक शारीरिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का ह्रास करने वाला दुष्ट मनोविकार है। एक बार इस मानसिक व्याधि के रोगी बन जाने से मनुष्य कठिनता से इससे मुक्ति पा सके हैं, क्योंकि अधिक देर तक रहने के कारण यह गुप्त मन में एक जटिल मानसिक भावना ग्रंथि के रूप में प्रस्तुत रहता है। वहीं से हमारी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को परिचालित करता है। आदत बन जाने से चिंता नैराश्य का रूप ग्रहण कर लेती है। ऐसा व्यक्ति निराशावादी हो उठता है। उसका संपूर्ण जीवन नीरस, निरुत्साह और असफलताओं से परिपूर्ण हो उठता है।

चिंता का प्रभाव संक्रामक रोग की भाँति विषैला है। जब हम चिंतित व्यक्ति के संपर्क में रहते हैं, तो हम भी निराशा के तत्त्व खींचते हैं और अपना जीवन निरुत्साह से परिपूर्ण कर लेते हैं। बहुत से व्यक्ति कहा करते हैं—"भाई अब हम थक गए, बेकाम हो गए। अब परमात्मा हमें सँभाल ले तो अच्छा

है।" वे इसी रोने को रोते रहते हैं—"हम बड़े अभागे हैं, बदनसीब हैं, हमारा भाग्य फूट गया है, दैव हमारे प्रतिकूल है, हम दीन हैं गरीब हैं। हमने सर तोड़ परिश्रम किया परंतु भाग्य ने साथ नहीं दिया।" ऐसी चिंता करने वाले व्यक्ति यह नहीं जानते कि इस तरह का रोना रोने से हम अपने हाथ से अपने भाग्य को फोड़ते हैं, उन्नति रूपी कौमुदी को काले बादलों से ढँक लेते हैं।

एक सुप्रसिद्ध विद्वान का कथन है—"आपके जीवन में नाना पुरानी दुःखद, कटु, चुभने वाली स्मृतियाँ दबी हुई पड़ी हैं। उनमें नाना प्रकार की बेवकूफियाँ, अशिष्टताएँ, मूर्खता से युक्त कार्य भरे पड़े हैं। अपने मन-मंदिर के किवाड़ उनके लिए बंद कर दीजिए। उनकी दुःख भरी पीड़ा, वेदना, हाहाकार की काली परछांई वर्तमान जीवन पर मत आने दीजिए। इस मन के कमरे में इन मृतकों को, भूतकाल के मुरदों को दफना दीजिए। इसी प्रकार मन का वह कमरा बंद कर दीजिए जिसमें भविष्य के लिए मिथ्या भय, शंकाएँ, निराशापूर्ण कल्पनाएँ एकत्रित हैं। इस अजन्मे भविष्य को भी मन की कोठरी में दृढ़ता से बंद कर दीजिए। मरे हुए अतीत को अपने मुरदे दफनाने दीजिए। आज तो 'आज' की परवाह कीजिए। 'आज' यह मदमाता, उल्लासपूर्ण 'आज' आपकी अमूल्य निधि है। यह आपके पास है। आपका साथी है। 'आज' की प्रतिष्ठा कीजिए। उससे खूब खेलिए, कूदिए और मस्त रहिए और उसे अधिक से अधिक उल्लासपूर्ण बनाइए। 'आज' जीवित चीज है। 'आज' में वह शक्ति है, जो दुःखद कल को भुलाकर भविष्य के मिथ्या भयों को नष्ट कर सकता है।"

इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि भविष्य के लिए कुछ न सोचें, या न विचारें? नहीं, कदापि नहीं। इसका तात्पर्य यही है कि आगे आने वाले 'कल' के लिए, व्यर्थ ही चिंता करने से काम न चलेगा, वरन अपनी समस्त बुद्धि, कौशल, युक्ति और उत्साह से आज का कार्य सर्वोत्कृष्ट रूप में संपन्न करने से चलेगा। यदि हम 'आज' का कार्य कर्त्तव्य समझकर संपूर्ण एकाग्रता और लगन से पूर्ण करते हैं, तो हमें 'कल' की (भविष्य की) चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार आप उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

ईसाइयों में प्रार्थना का एक अंश इस प्रकार है, "हे प्रभु! हमें आज का भोजन दीजिए। हमें आज समृद्ध कीजिए।" स्मरण रखिए, प्रार्थना का

तात्पर्य है कि 'आज' हमें भोजन, आनंद, समृद्धि प्राप्त हो। इसमें न तो बीते हुए कल के लिए शिकायत है और न आने वाले 'कल' के लिए याचना का भय। यह प्रार्थना हमें 'आज' (वर्तमान) का महत्त्व स्पष्ट करती है। यदि हम आज को आदर्श रूप में अधिकतम आनंद से व्यतीत कर लें तो हमारा भावी जीवन स्वयं समुन्नत हो सकेगा। सैकड़ों वर्ष पूर्व एक निर्धन दर्शनवेत्ता ऐसे पर्वतीय प्रदेश में घूम रहा था, जहाँ लोग कठिनता से जीविकोपार्जन कर पाते थे। एक दिन उसने उन्हें एकत्रित किया और एक लघु भाषण में कहा— 'कल' की चिंताओं में निमग्न आत्माओ! कल के भय, चिंताओं और अंधकार में क्यों इस सुनहरे वर्तमान को नष्ट कर रहे हो? कल स्वयं अपनी चिंता करेगा। यदि तुम आज को अधिकाधिक आनंद, संतोष और आदर्श रूप में व्यतीत कर सको तो उत्तम है। परमेश्वर स्वयं तुम्हारे भविष्य को समुन्नत करने में प्रयत्नशील है।''

महापुरुष ईसा ने कहा है—''कल की चिंता मत करो।'' पर इसका वास्तविक मर्म बहुत कम लोग समझते हैं। आप कहेंगे कल की चिंता कैसे न करें? हमारा परिवार है, हमारे बच्चों की शिक्षा, वस्त्र, भोजन, मकान की विषम समस्याएँ हैं? कल हमें उनके विवाह करने हैं? क्या रुपया एकत्रित किए बिना काम चलेगा? हमें बीमा पॉलिसी में रुपया जोड़ना चाहिए? हमारी आज नौकरी लगी है, कल छूट भी सकती है, आज हम स्वस्थ हैं, कल बीमार पड़ेंगे तो कैसे काम चलेगा? वृद्धावस्था में हमारा क्या होगा?

इस प्रकार की बातें ठीक हैं। एक विचारशील मस्तिष्क में ये विचार आने चाहिए। हमारा सुझाव है कि आप 'कल' के लिए अपने आप को शक्तिशाली बनाने के लिए, योग्यतर, स्वस्थ, आर्थिक दृष्टि से संपन्न होने के लिए नई योजनाओं को कार्यान्वित करें। भावी जीवन के लिए जितना संभव हो तैयारी कीजिए, परिश्रम, उद्योग, मिलनसारी द्वारा समाज में अपना स्थान बनाइए, पर चिंता न कीजिए। योजना बनाकर दूरदर्शितापूर्ण कार्य करना एक बात है, चिंता करना दूसरी बात है। चिंता से क्या हाथ आवेगा? जो रही सही शक्ति और मानसिक संतुलन है, वह भी नष्ट हो जाएगा। चिंता तो आपको उत्साह, शक्ति और प्रसन्नता से पंगु कर देगी। जिस कठिनाई या प्रतिरोध को आप अपनी व्यक्तिगत शक्तियों से बखूबी जीत सकते थे, वह

पर्वत सदृश कठिन प्रतीत होगी। चिंता आपके सामने एक ऐसा अंधकार उत्पन्न करेगी, कि आपको उस महान शक्तिकेंद्र का ज्ञान न रह जाएगा जो आदिकर्त्ता परमेश्वर ने आपके अंग-प्रत्यंग में छिपा रखा है।

युद्ध, बीमारी, दिवाला या दु:खद मृत्यु के अंधकारपूर्ण रुदन में, शुभ चिंतन और अशुभ चिंतन में केवल यह अंतर है—अच्छा विचार वह है जो कार्य-कारण के फल को तर्क की कसौटी पर परखता है, दूर की देखता है और किस कार्य से भविष्य में क्या फल होगा, इसका संबंध देखकर भावी उन्नति की योजनाएँ निर्माण करता है। सृजनात्मक विचार भावी निर्माण में पुरानी गलतियों की सजा के अनुभवों और संसार की कठोरताओं को देख-भाल कर अपनी उन्नति के लिए योजना प्रदान करता है। अच्छे चिंतन में संग्रहित सांसारिक अनुभवों के बल पर उत्साह और आशा का शुभ्र आलोक है, कार्यनिष्ठा और साहस का बल है, शक्ति और कुशलता का पावन योग है, कार्य से भागकर नहीं, वरन गुत्थियों को सुलझाकर अपूर्व सहनशक्ति का परिचय देने का विधान है।

बुरी विचारधारा का प्रारंभ ही डर और घबराहट से होता है। कठिनाइयाँ आ रही हैं, हमें वह कार्य करना ही पड़ेगा, जो साधारणत: हमने नहीं किया है, पैसा और शक्ति पास में नहीं रहेगी, फिर क्या किया जाएगा—ऐसी फालतू गलत कल्पनाएँ आकर शक्ति और उत्साह का विनाश कर देती हैं। मानसिक संतुलन नष्ट हो जाता है। इच्छाशक्ति और मनोबल पिछली गलतियों की स्मृति और वेदनाओं से नष्ट या पंगु हो जाता है। पश्चात्ताप एवं आत्मग्लानि के अंधकार में ऐसा व्यक्ति रही सही शक्ति को भी खो बैठता है। यह गलत कल्पनाएँ चिंता जैसी राक्षसी की ही संतानें हैं।

आजकल पागलखानों तथा शफाखानों में मानसिक रोगों के जितने बीमार आते हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे होते हैं, जो चिंता-भार के कारण मन को संतुलित नहीं रख सके हैं। उनके मस्तिष्क में बीते हुए जीवन का हृदयद्रावक हाहाकार, कल्पना, मौन रुदन है। प्रिय व्यक्ति के विछोह की आकुलता, पीड़ा और दुस्सह वेदना है। हजारों रुपयों की हानि की कसक है। समाज में दूसरों द्वारा की हुई मान हानि की जलन है, समाज, अफसर, रूढ़ियों तथा पुलिस द्वारा किए गए अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह है। कोई पिटते-कुटते ऐसे जड़ निराशावादी हो गए हैं कि उनका जैसे आनंद का

श्रोत ही सूख गया है। इन्हीं अनुभवों के बल पर वे भविष्य में भय से उत्पन्न दुष्प्रवृत्तियों के शिकार हैं। अपनी प्रतिकूलता के दूषित विचार उनके अंत:करण की उत्तम योजनाओं को क्षणभर में धूल में मिला देते हैं। मनुष्य की मानसिक शक्तियों को क्षय कर चिंता में फँसाने वाला भय महाराक्षस है। भय की प्रथम संतान चिंता है। इन स्मृतियों तथा भावी दु:स्वपनों का द्वंद्व मानसिक रोगों के रूप में प्रकट होता है। अव्यक्त आशंकाएँ, कुकल्पनाएँ संस्काराधीन होती हैं, वे रोग के रूप में उद्भूत होकर किसी प्रकार अपनी परितृप्ति चाहती हैं।

आपत्ति निवारण के कुछ स्वर्णिम सूत्र

विपत्ति से घबराओ मत। विपत्ति कड़वी जरूर होती है, पर याद रखो, चिरायता और नीम जैसी कड़वी चीजों से ही ताप का नाश होकर शरीर निर्मल होता है।

विपत्ति में कभी भी निराश मत होओ। याद रखो, अन्न उपजाकर संसार को सुखी कर देने वाली जल की बूँदें काली घटा से ही बरसती हैं।

विपत्ति असल में उन्हीं को विशेष दु:ख देती है, जो उससे डरते हैं। जिनका मन दृढ़ हो, संसार की अनित्यता का अनुभव करता हो और हर बात में भगवान की दया देखकर निडर रहता हो, उसके लिए विपत्ति फूलों की सेज के समान है।

जैसे रास्ते में दूर से पहाड़ियों को देखकर मुसाफिर घबरा उठता है कि मैं इन्हें कैसे पार करूँगा, लेकिन पास पहुँचने पर वे उतनी कठिन मालूम नहीं होतीं, यही हाल विपत्तियों का है। मनुष्य दूर से उन्हें देखकर घबरा उठता है और दुखी होता है, परंतु जब वे ही सिर पर आ पड़ती हैं तो धीरज रखने से थोड़ी सी पीड़ा पहुँचाकर ही नष्ट हो जाती हैं।

जिस तरह खरादे बिना सुंदर मूर्ति नहीं बनती उसी तरह विपत्ति से गड़े बिना मनुष्य का हृदय सुंदर नहीं बनता।

विपत्ति प्रेम की कसौटी है। विपत्ति में पड़े हुए बंधु-बाँधवों में तुम्हारा प्रेम बढ़े और वह तुम्हें निरभिमान बनाकर आदर के साथ उनकी सेवा करने को मजबूर कर दे, तभी समझो कि तुम्हारा प्रेम असली है। इसी प्रकार तुम्हारे विपत्ति पड़ने पर तुम्हारे बंधु-बाँधवों और मित्रों की प्रेम-परीक्षा हो सकती है।

काले बादलों के अँधेरे में ही बिजली की चमक छिपी रहती है, विपत्ति अर्थात दु:ख के बाद सुख, निराशा के बाद आशा, पतझड़ के बाद बसंत ही सृष्टि का नियम है।

याद रहे कि जब तक सुख की एकरसता को वेदना की विषमता का गहरा आघात नहीं लगता, तब तक जीवन के यथार्थ तत्त्व का परिचय नहीं मिल सकता। विपत्ति पड़ने पर पाँच प्रकार से विचार करो—

१—विपत्ति अपने ही कर्म का फल है, इसे भोग लोगे तो तुम कर्म के एक कठिन बंधन से छूट जाओगे।

२—विपत्ति तुम्हारे विश्वास की कसौटी है इसमें न घबड़ाओगो तो तुम्हें भगवान की कृपा प्राप्त होगी।

३—विपत्ति मंगलमय भगवान का विधान है और उनका विधान कल्याणकारी ही होता है। इस विपत्ति में ही तुम्हारा कल्याण ही भरा है।

४—विपत्ति के रूप में जो कुछ तुम्हें प्राप्त होता है, यह ऐसा ही होने को था, नई चीज कुछ भी नहीं बन रही है, भगवान का पहले से रचकर रखा हुआ ही दृश्य सामने आता है।

५—जिस देह को, जिस नाम को और जिस नाम तथा देह के संबंध को सच्चा मानकर तुम विपत्ति से घबराते हो, वह देह, नाम और संबंध सब आरोप मात्र हैं, इस जन्म से पहले भी तुम्हारा नाम, रूप और संबंध था, परंतु आज उससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं है,यही हाल इसका भी है, फिर विपत्ति में घबराना तो मूर्खता ही है, क्योंकि विपत्ति का अनुभव देह, नाम और इनके संबंध को लेकर ही होता है।

जीवन के समस्त अन्य व्यापारों की तरह कठिनाइयों और आपत्तियों का आते-जाते रहना भी स्वाभाविक नियम है। उनको बुरा या भला समझना बहुत कुछ अपनी मनोवृत्ति पर निर्भर है। पर वास्तव में अधिकांश आपत्तियाँ मनुष्य को उसकी गलतियाँ बतलाने वाली होती हैं इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि कैसी भी आपत्तियाँ क्यों न आवें, धैर्य को कभी न छोड़ें और शांत चित्त से उनके निवारण का प्रयत्न करें। ऐसा करने से आपत्तियाँ हानि करने के बजाय अंतिम परिणाम में लाभकारी ही सिद्ध होंगी।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा ।